

अहिंसा की उत्पत्ति और पर्याय

गौरव कुमार

एम.एस.डब्ल्यू. छात्र, महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

सारांश

अहिंसा जितनी कठिन मानी जाती है उतनी कठिन है नहीं!! जरूरत यह है कि हम अहिंसा को स्पष्टता के साथ उसके सर्वोपरि उपयोगिता को समझ लें तो आचरण करना कठिन नहीं है। इसके लिए भारत-सावित्रीवाला श्लोक बार-बार दुहराना आवश्यक है उसमें ऋषि कवि पुकार-पुकार कर कहते हैं कि जिस धर्म में शुभ अर्थ और शुभ काम सहज ही समाये हैं ऐसे धर्म का आचरण हम क्यों नहीं करते। यह धर्म तिलक लगाने अथवा गंगा स्नान करने का नहीं है, बल्कि अहिंसा और सत्य का है। हमारे यहाँ दो अमर वाक्य हैं: “अहिंसा परम धर्म है”, और “सत्य के सिवाय और दूसरा धर्म नहीं है।” इसमें इच्छा करने के योग्य समस्त अर्थ और काम निहित हैं तो फिर हम हिचकिचाते क्यों हैं? फिर भी, स्वीकार करना पड़ता है कि जो सरल है, वही लोगों को कठिन मालूम पड़ता है। यह वृत्ति हमारी जड़ता को सूचित करती है। यहाँ जड़ता शब्द को निन्दा के अर्थ में नहीं समझना चाहिए। यहाँ मैंने पारिभाषित अंग्रेजी शब्द का अनुवाद किया है। वस्तु-मात्र में जड़ता नामक गुण रहता है और वह अपनी जगह उपयोगी भी है। इसीलिए हम टिके हुए हैं। जड़ता का यह गुण न हो, तो हम दौड़ते ही रहें। लेकिन इस जड़ता के वशीभूत हो जाने से हम लोगों में इस मान्यता ने घर कर लिया है कि सत्य और अहिंसा का पालन करना बहुत कठिन है। यह जड़ता दोषयुक्त है। इसके दोष को दूर करना आवश्यक है। पहले तो हमें संकल्प करना चाहिए कि असत्य और हिंसा से चाहे जो लाभ हो, हमारे लिए यह निषिद्ध है; क्योंकि वह लाभ, लाभ नहीं बल्कि हानि-रूप होगा। यदि हम इतना निश्चयपूर्वक मान लें, तो दोनों गुण सरलता से सीखे जा सकते हैं।

मूल शब्द: अहिंसा, सत्य, हिंसा

1. प्रस्तावना

अहिंसा की उत्पत्ति हिंसा की उपस्थिति का प्रमाण माना जा सकता है। नकारात्मक शब्दावली में हिंसा नहीं करना, चोट नहीं पहुंचाना, हत्या नहीं करने को हम अहिंसा मान लेते हैं। छान्दोग्यनिषद में इसका प्रयोग सर्वप्रथम हुआ है। पद्म पुराण में अहिंसा को प्रथम पुष्प स्वीकार किया गया है। कई विद्वानों का मानना है कि सभी धर्मों की उत्पत्ति अहिंसा से हुई है। समाज को अहिंसामय बनाने की युक्ति के रूप में मनुस्मृति यह व्याख्या करता है कि जो मनुष्य बिना अपराध किए हुये प्राणियों को अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख देता है, हिंसा करता है वह न तो इस जन्म में और न तो मरने के बाद स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है।

महात्मा गांधी 15 जुलाई, 1926 को अहिंसा-सबसे बड़ी ताकत विषय पर कहते हैं कि सबसे बड़ी ताकत जो मानव को प्रदान की गई है, अहिंसा है। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि ईश्वर सत्य से इतर कुछ और नहीं है। लेकिन सत्य की प्राप्ति अहिंसा के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से नहीं हो सकती; कभी नहीं होगी। जो गुण मानव और अन्य सभी पशुओं के बीच का अन्तर स्पष्ट करता है, वह मानव में अहिंसक रह सकने की क्षमता; और मानव जिस हद तक अहिंसा का पालन करता है, उसी हद तक अपने लक्ष्य के निकट तक पहुँचता है। उससे आगे नहीं। निःसंदेह, उसको कई और गुण भी प्रदान किए गए हैं। परन्तु यदि वे मुख्य गुण अर्थात् अहिंसा की भावना के विकास में मदद नहीं देते तो वे उसे पशु से भी निचले उस स्तर तक घसीट कर ले जाने का काम ही करते हैं, जिस स्तर से वह अभी-अभी उठकर ऊपर आया ही है।

अहिंसा के बिना शान्ति नहीं हो सकती है, गांधी लिखते हैं कि जबतक अहिंसा की भावना करोड़ों स्त्री-पुरुषों में प्रधान नहीं बन जाती तब तक

शान्ति-शान्ति की गुहार सफल सिद्ध नहीं होगी। सशस्त्र संघर्ष से आर्थिक संघर्ष के दुष्परिणाम अधिक भयानक होते हैं। उसी तरह राष्ट्रों के सशस्त्र संघर्ष से हम भयभीत हो जाते हैं लेकिन आर्थिक संघर्ष उस सशस्त्र संघर्ष से किसी तरह कम नहीं है। सशस्त्र संघर्ष मानो एक शल्य-चिकित्सा है और आर्थिक संघर्ष दिनों दिन चलनेवाली पीड़ा। युद्ध साहित्य कहलाने वाले साहित्य में युद्ध के जो परिणाम वर्णन किए जाते हैं, इसके दुष्परिणाम उनसे कम भयानक नहीं हैं। हम इस दूसरे युद्ध (आर्थिक) को अधिक महत्त्व नहीं देते क्योंकि हम इसके घातक प्रभावों के आदी हो गए हैं।

भारत में हममें से बहुत लोग रक्तपात होते देखकर काँप उठते हैं। हममें से बहुत गोवध को लेकर नाराज होते हैं, लेकिन धीरे-धीरे लगातार जो यंत्रणा मनुष्यों और पशुओं को लोभ के वश होकर दी जा रही है, उस पर हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। तिल-तिल होनेवाली इस मौत के हम आदी हो गए हैं और इसको कुछ गिनते ही नहीं।

क्या अमेरिका, इंग्लैंड और पश्चिम के अन्य महान राष्ट्र तथा कथित अधिक दुर्बल या असभ्य जातियों का शोषण जारी रखते हुए भी उस शान्ति को हासिल करने की आशा कर सकते हैं जिसके लिए सारा संसार ललक रहा है? या क्या अमेरिका आदि एक-दूसरे का शोषण और व्यावसायिक स्पर्धा जारी रखते हुए भी विश्व को शान्ति बनाए रखने का आदेश देने की धृष्टता करेंगे? जबतक भावना नहीं बदल जाती, बाह्य स्वरूप भी नहीं बदला जा सकता। बाह्य स्वरूप तो भीतरी भावना की अभिव्यक्ति मात्र है। ऊपरी तौर से हम स्वरूप बदल सकने में शायद सफल हो जाएं, लेकिन यदि भीतरी भावना अपरिवर्तित रहे तो वह परिवर्तन अवास्तविक-नाममात्र का ही होगा। अच्छी दिखाई देनेवाली कन्न आखिरकार गल रहे मांस और अस्थियों को ही ढांकती है।

पश्चिम में युद्ध की भावना को निर्मूल करने का जो महान प्रयत्न किया जा रहा है मेरी मंशा उसे महत्त्व न देने या कम महत्त्व देने का कदापि नहीं है। मेरी मंशा तो एक ऐसे समानधर्मी सहकर्मी के नाते सतर्क रहने की सलाह देना-भर है, जो स्वयं भी अपने विनम्र ढंग से इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, भले ही उसका ढंग कुछ भिन्न है और क्षेत्र निःसंदेह अपेक्षाकृत सीमित है। फिर भी यदि मेरा प्रयोग इस अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर ले और जो लोग व्यापक क्षेत्र में काम कर रहे हैं यदि वे तब तक उतने सफल न हो पाएं तो इससे और कुछ नहीं तो बड़े क्षेत्र में वैसे ही प्रयोग के लिए रास्ता तो तैयार हो ही जाता है।

घृणा की भावना को खत्म किए बिना और सच्चे प्रेम से एक न एक दिन पूर्ण शान्ति होगी। गांधी ने लिखा कि मैं जिस सीमित क्षेत्र में काम कर रहा हूँ, उसमें मैंने देखा कि जब तक मैं स्त्री-पुरुषों के दिलों को नहीं छूता तब तक मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं यह भी मानता हूँ कि जब तक घृणा की भावना किसी-न-किसी रूप में बनी रहती है, तब तक शान्ति स्थापित कर सकना, या शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकना असम्भव हैं। यदि हम अंग्रेजों से घृणा करते हैं तो हम आपस में एक-दूसरे से भी प्रेम नहीं कर सकते। हम जापानियों से प्रेम और अंग्रेजों से घृणा नहीं कर सकते। हमें पूरी तरह प्रेम के नियम के अधीन होना होगा, या फिर उसे बिल्कुल तिलांजलि देनी पड़ेगी। यदि हमारे आपसी प्रेम का आधार दूसरों के प्रति घृणा हो तो वह तनिक-सा बोज़ पड़ते ही टूट जाएगा। सच तो यह है कि ऐसा प्रेम कभी सच्चा प्रेम नहीं होता। वह तो शस्त्र-रक्षित शान्ति जैसा है। ऐसा ही पश्चिम के युद्ध विरोधी महान आन्दोलन का हाल भी हो जाएगा। युद्ध केवल तभी बन्द होगा जब मानव की अन्तरात्मा इतनी ऊँची उठ जाएगी कि जीवन के हर क्षेत्र में मानव प्रेम के नियम को ही निर्विवाद रूप से सर्व शक्तिमान स्वीकार कर लेगा। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसा कभी नहीं होगा। अपने भौतिक अस्तित्व के रहते मैं अपना यह विश्वास कायम रखूँगा कि कभी-न-कभी ऐसा अवश्य होगा। (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 31, पृ. 148-150), (अंग्रेजी से) हिंदू, 8-11-1926

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य अहिंसा की उत्पत्ति और पर्याय के विषय में जानना और समझना है। यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। जिसमें सम्बंधित पुस्तकों से तथ्यों का संकलन किया गया है।

2. अहिंसा परमो धर्म

कैनन शोफर्ड और दूसरे सच्चे और उत्साही ईसाई इंग्लैंड में युद्धों के खिलाफ आन्दोलन कर रहे हैं। दिल्ली के 'स्टेट्समैन' ने चार लेख लिखकर इस आन्दोलन की बेहद निन्दा की है। इस पत्र ने अपने पक्ष-समर्थन में 'भगवद्गीता' को भी इन शब्दों में घसीटा है : असल में, ईसाई धर्म की वास्तविक किन्तु कठिन शिक्षा यही मालूम पड़ती है कि समाज को अपने शत्रुओं से लड़ना चाहिए, पर साथ ही उनसे प्रेम भी करना चाहिए। 'भगवद्गीता' की भी साफ-साफ यही शिक्षा है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि विजय उसे मिलती है, जो पूर्णतया निर्भय और निर्भर होकर लड़ता है। सचमुच, इस महान ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में धर्म के आधार पर युद्ध का विरोध करने वाले तथा एक सच्चे योद्धा के बीच सारे विवाद का सर्वोच्च धरातल पर, सदा के लिए, समाधान कर दिया गया है। स्थानाभाव के कारण, हम उसमें से उद्धरण तो नहीं दे सकते। पर वह सारा काव्य एक बार नहीं, बार-बार पढ़ने की चीज है।

इन लेखों का लेखक शायद यह नहीं जानता कि उसने जो श्लोक उद्धृत किये हैं, आतंकवादियों ने भी अपने पक्ष में ठीक उन्हीं श्लोकों का हवाला दिया है। सच्ची बात तो यह है कि निर्विकार चित्त से 'भगवद्गीता' पढ़ने पर मुझे तो

'स्टेट्समैन' के इस लेखक ने जो अर्थ लगाया है, उससे ठीक विपरीत अर्थ मिला है। वह भूल जाता है कि पश्चिम के युद्ध-विरोधी, जिस अर्थ में धार्मिक आपत्ति-कर्ता कहे जाते हैं वैसे अर्जुन नहीं था। अर्जुन तो युद्ध का हिमायती था। कौरवों की सेना से वह पहले भी कई बार लोहा ले चुका था। उसके हाथ-पैर तो तब ढीले पड़ गये जब उसने दोनों सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार देखा और उनमें अपने प्यारे से-प्यारे स्वजनों तथा पूज्य गुरुजनों को पाया, जिनसे उसे युद्ध करना था। न तो वहाँ मानवता के प्रति प्रेम था, और न युद्ध के प्रति घृणा ही थी, जिससे प्रेरित होकर अर्जुन ने कृष्ण से वे प्रश्न पूछे थे और कृष्ण भी ऐसी परिस्थिति में दूसरा कोई उत्तर दे ही नहीं सकते थे। 'महाभारत' तो रत्नों की एक खान है, जिनमें से 'गीता' केवल एक किन्तु सबसे अधिक प्रसिद्ध रत्न है। लिखा है कि उस युद्ध में लाखों योद्धा एकत्र हुए थे और दोनों तरफ से अवर्णनीय प्रहार किए गए थे। इन लाखों की सेना में से केवल सात को जीवित रखकर तथा उन्हें वह निःसार विजय प्रदान करके इस महाकाव्य के अमर कवि ने तो युद्ध की निरर्थकता ही सिद्ध की है। किन्तु केवल युद्ध को एक मूर्खतापूर्ण और धोखे की चीज सिद्ध करने के अलावा, 'महाभारत' एक उससे भी ऊँचा सन्देश हमें देता है। मनुष्य को अगर एक अमर प्राणी समझा जाये तो 'महाभारत' उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है, और 'महाभारत' के रचयिता ने इसके वर्णन में एक ऐतिहासिक घटना का उपयोग-मात्र किया है, जो तत्कालीन छोटे-से जगत के लिए तो बड़ी महत्त्वपूर्ण थी, पर जो आजकल की दुनिया के लिए कोई भी महत्त्व नहीं रखती। अनेक आधुनिक आविष्कारों के कारण आज तो यह सारा संसार हथेली पर रखे हुए आँवले के समान मालूम होने लगा है। उसके किसी एक कोने में घटी हुई घटना का असर सारे संसार में दूर-दूर तक फैल जाता है। यह बात उस समय नहीं थी। हमारे हृदयों में जो दिन-रात सत् और असत् के बीच सनातन संघर्ष चल रहा है, महाभारतकार उसे इस कथा द्वारा एक अमर काव्य के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह बताता है कि यद्यपि अन्त में तो सत्य की ही विजय होती है, तो भी असत् किस तरह सशक्त होकर अत्यन्त विवेकशील पुरुष को भी किंकरतव्यविमूढ़ बना देता है। 'महाभारत' सदाचार का एकमात्र मार्ग भी हमें बताता है।

'भगवद्गीता' का वास्तविक सन्देश जो-कुछ भी हो, शान्ति-स्थापना-आन्दोलन के नेताओं के लिए तो 'गीता' की शिक्षा नहीं, 'बाइबिल' की शिक्षा महत्त्व रखती है, क्योंकि उसी को उन्होंने अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक बना रखा है। फिर, 'बाइबिल' का भी तो कई तरह से अर्थ लगाया जाता है। उन्हें 'बाइबिल' का वह अर्थ स्वीकार नहीं है, जो साधारणतया ईसाई धर्माधिकारी लगाते हैं। उन्हें तो वह अर्थ मंजूर है जो 'बाइबिल' को श्रद्धायुक्त मन से पढ़ने पर उन्हें प्रतीत होता है। असल में, सबसे महत्त्वपूर्ण चीज तो है युद्ध-विरोधियों का अहिंसा अर्थात् प्रेम-धर्म-विषयक ज्ञान। अहिंसा का अर्थ बहुत व्यापक है। अंग्रेजी का 'नॉन-वॉयलेन्स' शब्द उसके लिए बिल्कुल अपर्याप्त है। 'स्टेट्समैन' के ये लेख युद्ध-विरोधियों के लिए एक खासी चुनौती ही हैं। मुझे दुःख है कि इस आन्दोलन के विषय में मुझे पूरी जानकारी नहीं है जिससे मैं उसके बारे में अपनी निश्चित राय दे सकूँ। युद्ध विरोधियों के नजदीक भले मेरे विचारों का विशेष महत्त्व न हो, पर जहाँ तक मुझे भीतरी बातों का पता है, कुछ लोग तो जरूर उसका खयाल करेंगे। क्योंकि वे अकसर मुझ से पत्र-व्यवहार करते हैं। और अब तो वे एक कदम और आगे बढ़ गये हैं, क्योंकि उन्होंने रिचर्ड ग्रेग की 'द पॉवर ऑफ नॉन-वॉयलेन्स' नामक पुस्तक को लगभग अपनी पाठ्य-पुस्तक बना लिया है। लेखक के शब्दों में, यह पुस्तक अहिंसा के सिद्धान्त की मेरी व्याख्या को पाश्चात्य संसार की भाषा में प्रस्तुत करती है। इसलिए बगैर किसी प्रकार की दलील वगैरह दिये, अगर मैं यहाँ अहिंसा की

सफलता की कुछ शर्तें तथा फलितार्थ लिख दूँ, तो शायद धृष्टता न होगी। वे हैं :

1. अहिंसा परमश्रेष्ठ मानव-धर्म है, और पशुबल से वह अनन्त गुना महान और उच्च है।
2. अन्ततोगत्वा, वह उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती, जिनकी प्रेम-रूपी परमेश्वर में सजीव श्रद्धा नहीं है।
3. मनुष्य के स्वाभिमान और सम्मान-भावना की वह सबसे बड़ी रक्षक है। हाँ, वह मनुष्य की चल-अचल सम्पत्ति की हमेशा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती-हालाँकि अगर मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास कर ले तो शस्त्रधारियों की सेनाओं की अपेक्षा वह सम्पत्ति की अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्याय से अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचार की रक्षा में वह जरा भी सहायक नहीं हो सकती।
4. जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन करना चाहे, उन्हें आत्मसम्मान को छोड़कर, अपना सर्वस्व (राष्ट्रों को तो एक-एक आदमी तक) बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए वह दूसरे के देशों पर आधिपत्य रखने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवाद से, जो कि अपनी रक्षा के लिए पशुबल पर निर्भर रहता है, बिलकुल मेल नहीं खा सकता।
5. अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि प्रेम-रूपी ईश्वर में तथा मनुष्य-मात्र में उनकी सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धान्त बना लें, तो यह हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होना चाहिए। यों कभी-कभी छिटपुट मामलों में उसका पालन करने से लाभ नहीं हो सकता।

यह समझना एक जबरदस्त भूल है कि अहिंसा का यह नियम केवल व्यक्तियों के लिए ही ठीक और लाभदायक है, संसार के सामान्य मानव-समूह के लिए नहीं (अंग्रेजी से) हरिजन, 5-9-1936, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 63 पृ.सं. 283-285)

3. अहिंसा कैसे सीखी जाये?

एक प्रश्न कि आप अहिंसा-अहिंसा रटते हैं, इससे लोग अहिंसक नहीं हो जायेंगे। अब जब आपने गुजराती में लिखना शुरू किया है, तो आपको लोगों को बताना चाहिए कि वे अपने जीवन में सबल की अथवा सच्ची अहिंसा किस प्रकार उतारें? इसके उत्तर में गांधी कहते हैं कि आपका प्रश्न अच्छा है और ठीक मौके पर पूछा गया है। आपके प्रश्न का उत्तर आपके पूछने से पहले भी, मैंने कई बार छिटपुट रूप में देने का प्रयास किया है। फिर भी, मुझे स्वीकार करना चाहिए कि इसी प्रश्न को विषय बनाकर कुछ लिखा हो, यह मुझे याद नहीं है। जितना देना चाहिए था उतना जोर मैंने इस विषय पर नहीं दिया है। मेरा समय सरकार से लड़ने-भर पर्याप्त साधन जुटाने में बीता है। आज तक यही उचित था। लेकिन हमने देख लिया कि ऐसा करने से अहिंसा अपंग रह गई है। सबल की अहिंसा की हम झाँकी तक नहीं ले सके हैं। अब अगर हमें आगे बढ़ना है तो पहले की अहिंसा को कुछ समय के लिए भूलना पड़ेगा। अगर हममें सच्ची अहिंसा का प्रादुर्भाव होगा, तो हम अपनी पहले की अहिंसा को भी उसके उज्ज्वल रूप में देख सकेंगे और अल्प प्रयास से ही उसमें शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त करेंगे। आगे उन्होंने

कहा कि मैं अब कांग्रेस से अलग हो गया हूँ, इसलिए कांग्रेस के नाम पर अब मैं अकेला भी सविनय अवज्ञा नहीं कर सकता। लेकिन व्यक्तिगत अवज्ञा तो जब करना चाहूँ, कर सकूँगा। इसलिए यह मान लेने की कोई जरूरत नहीं है कि जब तक सच्ची अहिंसा का पाठ सीखा जा रहा है, तब तक सविनय अवज्ञा बिलकुल बन्द रहेगी। लेकिन मेरी कल्पना के अहिंसक दल में प्रवेश करने वाला अपने बारे में यह आशा न रखे कि वह तत्काल सविनय अवज्ञा कर सकेगा। उसे समझ लेना चाहिए कि जब तक उसने सच्ची अहिंसा का अनुभव नहीं किया, तब तक वह सविनय अवज्ञा कर ही नहीं सकता।

गांधी आचरण में अहिंसा को उतारने की तरकीब देते हुए लिखते हैं कि, आज तक हमलोग चरखे आदि को अहिंसा का आधार-रूप मानते आये हैं और वे ऐसे ही हैं और सदा रहेंगे। लेकिन हमें आगे बढ़ना है। अहिंसा का पूर्ण आचरण करने वाले ने अपने माता-पिता, पुत्र, पति-पत्नी, नौकर-चाकर, इन सबके साथ तो अपने सम्बन्ध अहिंसामय कर ही लिये होंगे अथवा कर लेंगे। लेकिन देश में जो उपद्रव होते हैं, उनका क्या हो? हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों का क्या इलाज है? चोर-डाकुओं के उपद्रव के समय वह क्या करेगा? जब ऐसा हो तब मर-मिटने का संकल्प कर लेना भर काफी नहीं है। इस तरह मर-मिटने के लिए भी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। मैं हिन्दू होऊँ तो मुझे मुसलमानों तथा अन्य विधर्मी जातियों के प्रति अपने अन्दर भाईचारे की वृत्ति का विकास करना चाहिए। मुझे अपने आसपास रहने वाले विधर्मियों के साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए, जैसा मैं अपने सहधर्मियों के साथ करता हूँ अथवा होना चाहिए। उनकी सेवा के अवसर खोजकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इस सेवा में डर नहीं होना चाहिए, कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। अहिंसा के शब्दकोश में भय के लिए स्थान ही नहीं है। अपने अन्दर ऐसा भाईचारा विकसित करने वाले ही साम्प्रदायिक दंगों में मर-मिट सकते हैं। यही बात चोर-डाकुओं के बारे में भी है। चोर डाकुओं की सामान्यतः कोई विशेष जाति नहीं होती। फिर भी इतना तो हम जानते ही है कि सामान्यतः अमुक जातियों में चोर-डाकू पाये जाते हैं। यह क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें सच्चा प्रेम होने के अतिरिक्त और किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। रविशंकर महाराज को अंग्रेजी का बिलकुल ज्ञान नहीं है। गुजराती भी वे केवल कामचलाऊ जानते हैं। भगवान ने उन्हें पड़ोसी के प्रति प्रेम का गुण दिया है, और उनकी सादगी ऐसी है कि सबकी नजर में चढ़ जाती है। अहिंसक व्यक्ति इतने सजग हों कि वे प्रत्येक क्षण का हिसाब दे सकें। (सेवाग्राम 15 जुलाई, 1940; सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 72, पृ. 309 (गुजराती से) हरिजन, 20.7.1940)

4. निष्कर्ष

मानव जाति के इतिहास में हिंसा और अहिंसा दोनों की अवधारणा साथ-साथ चली है और आज वर्तमान युग तक भी उसी प्रकार चल रही है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक डगल ने मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में हिंसा और अहिंसा दोनों के बीज प्रस्तुत किए हैं उसके बाद फ्रायड ने भी जीवन और मृत्यु को सारी मूल प्रवृत्तियों में समेट दिया। वेद, उपनिषद् गीता आदि ग्रंथों में अहिंसा को महाधर्म के रूप में शस्त्र ने अपनाया और दुनिया के सभी धर्मशास्त्र ने अपनाया है। गीता और श्रीमद्भगवत पुराण में भी हिंसा और अहिंसा के आधार पर मानव सभ्यता की एक मौलिक दृष्टि उपस्थित की है।

श्रीरामचरित मानस में भी अच्छाई और बुराई शुभ और अशुभ दोनों के बीच संघर्ष को सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण माना है।

5. संदर्भ सूची

1. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 31, पृ. 148-150), (अंग्रेजी से) हिंदू 8-11-1926
2. अंग्रेजी से) हरिजन, 5-9-1936, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 63 पृ.सं. 283-285
3. सेवाग्राम 15 जुलाई, 1940; सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 72, पृ. 309 (गुजराती से) हरिजन, 20.7.1940